इकाई २७ संघर्ष, समाधान और प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

२७.० उद्देश्य

२७.१ प्रस्तावना

२७.२ संकल्पनाओं को परिभाषित करना

२७.३ दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय अभिलक्षण

२७.४ संघर्षों का स्वरूप

- २७.४.१ भारत-पाकिस्तान के क्षेत्रीय विवाद
- २७.४.२ कच्चातिवू के ऊपर भारत-श्रीलंका विवाद
- २७.४.३ जल विभाजन पर संघर्ष

२७.५ संघर्षों का प्रबंधन और समाधान

- २७.५.१ पंचाट
- २७.५.२ मध्यस्थता
- २७.५.३ द्विपक्षीय वार्तालाप

२७.६ सारांश

२७.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

२७.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

२७.० उद्देश्य

दक्षिण एशिया एक संघर्षग्रस्त क्षेत्रा है। इस इकाई में संघर्ष के प्रबंधन और समाधान के लिए इस क्षेत्रा के देशों द्वारा अपनाए गए तरीकों की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- संघर्ष, संघर्ष प्रबंधन और संघर्ष समाधान की मूल धारणाओं को परिभाषित कर सकेंगें;
- दक्षिण एशिया में अन्तरराज्यीय संघर्ष के स्रोतों की पहचान कर पाएँगे;
- संघर्षों के स्वरूप को परिभाषित कर सकेंगे; और
- संघर्षों के समाधान के लिए अपनाए गए तरीकों का विवेचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

२७.१ प्रस्तावना

संघर्ष प्रत्येक समाज में गुप्त रूप से विद्यमान है। कुछ समाजों में यह छिपा रहता है तथा कई अन्य समाजों में यह हिंसा और विनाश के रूप में प्रकट होता है। संघर्ष व्यक्तिगत, पारिवारिक, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होते हैं। इस प्रकार, विश्लेषण का आधार और अभिकर्त्ताओं का स्वरूप प्रत्येक मामले में भिन्न होता है। यद्यपि सभी संघर्षों में कतिपय जातीय लक्षण होते हैं। इस इकाई में अन्तरराष्ट्रीय संघर्षों की चर्चा की गई है जिनमें दक्षिण एशिया के संप्रभु राज्य अन्तर्ग्रस्त हैं।

दक्षिण एशिया कई दीर्घकालिक संघर्षों का क्षेत्रा है। इन्हीं के कारण भारत और पाकिस्तान के बीच तीन युद्ध हुए और कई बार संकटकालीन स्थितियाँ बनीं। सैन्यबल के नियोजन ने दक्षिण एशिया की शांति की भंगुरता इस सीमा तक प्रस्तुत की है कि कुछ विदेशी आलोचकों और सरकारों ने इसे एक

'ख़तरनाक-क्षेत्रा' अथवा संभाव्य 'परमाणु दमकांक' का नाम दिया है। यह कहना चाहिए कि तनाव और प्रतिद्वन्द्विता के बावजूद, दक्षिण दशिया मतभेदों के समाधान के लिए दृढ़ राजनीतिक संस्कृत और व्यवस्था से भरपूर है। इसका अर्थ यह है कि संघर्षों के साथ-साथ, यदि उनका समाधान नहीं है, उनके प्रबंधन और निपटान के लिए अवसर पैदा हुए हैं तथा उस सीमा तक तकरीबन साथ-साथ प्रयास भी किए गए हैं यद्यपि कुछ मामलों में उनकी सफलता बहुत उत्साहजनक नहीं हैं। दक्षिण एशिया में संघर्षों के प्रबंधन और समाधान की जाँच करने से पहले संघर्ष, प्रबंधन और संघर्ष समाधान का अर्थ समझना आवश्यक है।

२७.२ संकल्पनाओं को परिभाषित करना

संघर्ष को कई तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है। छात्राों के बीच इस बारे में कोई विरोध नहीं है कि संघर्ष के क्या घटक हैं। उत्तरी अमेरिका में एक प्रमुख विद्यालय दो दलों के बीच हितों के टकराने को संघर्ष के रूप में परिभाषित करता है। उदाहरण के लिए कैनथ बूल्डिंग का कथन है: ''हितों के ऊपर संघर्ष वे स्थितियाँ हैं जिनमें कुछ बदलाव से, प्रत्येक दल के अपने निजी प्राक्कलन के अनुसार, कम से कम एक दल बेहतर स्थिति में होता है तथा किसी अन्य दल की स्थिति बदतर हो जाती है। झगड़ा वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक दल अभिज्ञात संघर्ष की सीमा तक दूसरे दल की भलाई को कम करने के लिए कार्य करता है।'' जोहन गलतुंग जो एक अन्य विद्यालय का प्रतिनिधित्व करते हैं, इस बात पर कायम हैं कि ''अन्याय और सोची-समझी हिंसा'' संघर्षमय स्थिति का प्रतीक है। उनके अनुसार, दो अभिनेताओं के बीच शारीरिक हिंसा और प्रत्यक्ष मुकाबला न होने का अवश्यमेव यह तात्पर्य नहीं है कि सोची-समझी हिंसा का पूरी तरह अभाव है। आदम कर्ल एक अधिक व्यापक परिभाषा देते हैं। उनके लिए, संघर्ष वह स्थिति है जहाँ एक दल के 'संभाव्य विकास' में दूसरे दल द्वारा 'बाधा' पैदा की जाए। तथापि, सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त परिभाषा संघर्षमय स्थिति को दलों के 'परस्पर विरोधी लक्ष्यों' से जोड़ती है। माहकल निकल्सन के अनुसार, 'संघर्ष तब होता है जब दो आदमी ऐसे काम करना चाहते हैं जो परस्पर अननुरूप हों। (वे दोनों एक ही काम को करने के इच्छुक होते हैं, जैसे एक ही सेब खाना चाहेंगे, अथवा वे कुछ ऐसा भिन्न काम करेंगे जहाँ भिन्न काम वास्तव में प्रतिकूल हों, उदाहरण के लिए दोनों एक साथ रहना चाहेंगे परन्तु एक सिनेमा जाना पसन्द करेगा तथा दूसरा घर पर रहना।) संघर्ष की परिभाषा का विस्तार एक व्यष्टि से समूहों (जैसे राष्ट्र) तक किया जा सकता है और दो दलों से अधिक संघर्ष में अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं। सिद्धान्तों पर फर्क नहीं पड़ता है।'' सभी परिभाषाओं में विद्यमान सर्वनिष्ठ तत्त्व उन अभिनेताओं अथवा दलों के अपसारी लक्ष्य और हित हैं जो अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में विभिन्न उपायों का आश्रय लेते हैं।

संघर्ष की संकल्पना से निकट से जुड़ा हुआ शब्द संघर्ष समाधान है। जॉन बर्टन संघर्ष समाधान को एक राजनीतिक दर्शन का नाम देते हैं। इसे ऐसे परिणाम और शान्तिपूर्ण उपाय के रूप परिभाषित किया गया है जिसके द्वारा उस परिणाम की प्राप्ति होती है। हग मिआल के अनुसार संघर्ष समाधान ''उस स्थिति में बदलाव का सूचक है जो संघर्ष के अंतर्निहित स्रोत को अलग कर देता है। ऐसा उनके बीच संबंधों में परिवर्तन अथवा मूल दलों के विघटन और प्रतिस्थापन के कारण होता है। यदि संघर्ष एक पक्ष की सैन्य विजय के द्वारा निपटा दिया जाए और दूसरा पक्ष उस परिणाम को स्वीकार न करें तथा अन्य झगड़े के लिए संगठित होना शुरू कर दें तो उनका अन्तर्निहित संघर्ष पूरी तरह समाप्त नहीं होता है और वह संघर्ष का समाधान हुआ नहीं माना जाएगा।'' इस प्रकार संघर्ष समाधान के दो मौलिक सिद्धान्त हैं: दल परिणाम से सन्तुष्ट होने चाहिए जो उनकी अपेक्षित आवश्यकताओं और हितों को पूरा करे और उस परिणाम को प्राप्त करने के लिए कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए। जॉन ग्रूम कहते हैं कि दलों की पूर्ण तुष्टि मात्रा तभी होती है यदि ''उन्हें विवादग्रस्त परिस्थितियों और अन्य दलों की महत्त्वाकांक्षाओं का पूर्ण ज्ञान हो, और वास्तव में हो।'' उनका यह भी कहना है कि संघर्ष समाधान ऐसा लक्ष्य है जो वस्तुत: दुर्लभ होता है।

संघर्ष समाधान के तरीकों का विश्लेषण करने से पहले, संघर्ष प्रबन्धन शब्द की परिभाषा देना आवश्यक है। यह संघर्ष समाधान की दिशा और प्रक्रिया में आवश्यक प्रारंभिक कदम के रूप में माना जाता है। दूसरे शब्दों में, संघर्ष समाधान की अवस्था में पहुँचता है अथवा नहीं यह अंशत: उन तरीकों पर निर्भर करता है जिनके अनुसार यह संभव होता है। संघर्ष प्रबन्धन प्रक्रिया में कई उपाय अपनाने पड़ते हैं जिनमें प्रतिपक्षियों के बीच संचार और पारस्परिक अन्तर्क्रियाएँ कायम करना, हिंसा को समाप्त/कम करने के लिए व्यवस्था करना और उनकी समस्या के राजनीतिक हल के लिए दलों की वचनबद्धता प्राप्त करना शामिल हैं। शान्ति प्रक्रिया के लिए अन्तिम उपाय मार्ग प्रशस्त करता है जिसकी सफलता कथित संघर्ष के समाधान का निर्धारण करेगी। जॉन बर्टन संघर्ष प्रबंधन में तीन महत्त्वपूर्ण संघटक पाते हैं – भागीदारी, संचार और तीसरा पक्ष। प्रथम, संघर्ष के प्रति उभय दलों द्वारा भागीदारी की ''कोटि और गुणवत्ता'' है। इसमें ''समझौता कराने की उपलब्ध शक्ति, निर्णय करने वाली सम्बद्ध संस्था अथवा फोरम पर प्रभाव, उपलब्ध ज्ञान और वार्तालाप की निपुणता, और सहभागियों के अन्य प्रभावी लक्षण'' शामिल हैं। दूसरे, ''दलों के बीच संचार की कोटि और गुणवत्ता'' है जिसमें ''स्थिति के बारे में उनका बोध और समझदारी, सूचना प्राप्त करने और उसे संचारित करने की योग्यता'' शामिल है। तीसरे, ''यदि कोई तीसरा दल अन्तर्ग्रस्त है, वहाँ निर्णय लेने की शक्ति की कोटि, तटस्थता की कोटि, विश्लेषण निपुणता का स्तर और तीसरे दल के अन्य लक्षण शामिल हैं।''

संघर्षों का कई प्रकार से समाधान किया जा सकता है। कुछ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तरीके, पंचायत, मध्यस्थता और प्रत्यक्ष वार्तालाप हैं। पंचायत न्यायनिर्णयन की एक लम्बी प्रक्रिया का अंश है। यह संघर्ष समाधान के पुराने तरीकों में से एक तरीका है। इस तरीके से, कथित संघर्ष एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण (पंचायत न्यायाधिकरण अथवा अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय) को भेज दिया जाता है। पंचायत न्यायाधिकरण स्थायी न्यायालय से भिन्न एक तदर्थ मंच है जिसे प्रतिवादियों अथवा संघर्षरत दलों के बीच करार के द्वारा गठित किया जाता है। इसका अर्थ है कि यह एक मात्रा संघर्ष के लिए वैध है। न्यायाधिकरण का आकार हमेशा लघु होता है। इसके तीन, पाँच अथवा नौ सदस्य हो सकते हैं। तीन सदस्यीय न्यायाधिकरण के मामले में प्रत्येक प्रतिवादी अपना एक सदस्य चुनता है और तीसरा सदस्य तटस्थ विवाचक होता है जिसे दोनों राष्ट्रीय मनोनीत सदस्यों द्वारा चुना जाता है। यदि वे ऐसा नहीं कर पाते हैं वहाँ एक तीसरा दल जैसे अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय का अध्यक्ष किसी व्यक्ति को मनोनीत करता है। पाँच सदस्यीय न्यायाधिकरण में तीन निष्पक्ष सदस्यों का रखा जाना भी संभव है। कुछ अन्य मामलों में, दल एकमात्रा अथवा वकील अथवा राजदूत अथवा सेवानिवृत सरकारी कर्मचारी होते हैं। एक महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि राज्यों से उम्मीद की जाती है कि वे पंचाट (अभिनिर्णय) का अनुपालन करें और इसीलिए न्यायाधिकरण के निर्णय प्रतिवादियों पर बाध्यकारी होते हैं।

तृतीय दल की मध्यस्थता भी एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। यह संघर्ष में एक बड़ी समझौता अथवा वार्तालाप प्रक्रिया का अनन्य हिस्सा है। विभिन्न प्रकार के अभिकर्त्ता जैसे प्राइवेट अस्पताल, सरकारें और क्षेत्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय संगठन मध्यस्थता करते हैं। मध्यस्थता का प्रमुख उद्देश्य प्रतिवादियों के व्यवहार, रुचि और अभिज्ञान में बदलाव लाना होता है ताकि उनके बीच निपटान किया जा सके। प्रत्येक मध्यस्थ भिन्न रणनीति अपनाता है। उसमें दलों के बीच संचार की सुविधा स्थापित करना और उन पर वार्तालाप के दौरान उनकी दृढ़ स्थिति को छोड़ देने के लिए दबाव कायम करना शामिल है। मध्यस्थ अस्पष्ट मुद्दों को स्पष्ट करता है, विरोधियों के लिए सुझाव प्रस्तुत करता है, वार्तालाप में भाग लेता है और प्रस्ताव तैयार करता है। मध्यस्थ पक्षपाती या निष्पक्ष होता है। मध्यस्थता की प्रक्रिया में बल प्रयोग की मनाही है परन्तु वास्तव में कुछ मध्यस्थ दबाव डालने की प्रक्रिया अपनाते हैं अथवा प्रतिवादियों को इस उद्देश्य के साथ विभिन्न प्रोत्साहन मुहैया कराते हैं जिससे समाधान किया जा सके।

संघर्ष समाधान के लिए एक अन्य प्रक्रिया द्विपक्षीय वार्तालाप भी है। यहाँ, विवादग्रस्त दोनों दल तीसरे दल की सहायता के बिना प्रत्यक्ष वार्तालाप करते हैं। यह एक द्विपक्षीय कार्य है क्योंकि दल

एक-दूसरे के साथ संचार स्थापित करते हैं, बातचीत का वातावरण बनाते हैं, कार्यसूची निर्धारित करते हैं, कठोर समझौता करते हैं और उनके बीच होने वाले करार के लिए अपनी वचनबद्धता पेश करते हैं। वार्तालाप प्रक्रिया लम्बी और मुश्किल हो सकती है। यह संभावना हमेशा बनी रहती है कि वार्तालाप कभी भी आसानी से रुक जाए क्योंकि उस स्थिति को अनुकूल बनाने के लिए कोई दल नहीं होता है।

२७.३ दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय अभिलक्षण

दक्षिण एशिया एक संघर्षग्रस्त क्षेत्रा है। इसने बड़े पैमाने पर तीन युद्ध (१९४७-४८, १९६२, १९६५ और १९७१) और एक सीमित युद्ध (कारगिल युद्ध) झेले हैं। दक्षिण एशिया में संघर्षों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्रा के अभिलक्षणों का मूल्यांकन किया जाए क्योंकि इस क्षेत्रा की संरचना स्वयंमेव संघर्ष के लिए हालात् मुहैया कराती है। दक्षिण एशिया के प्रमुख अभिलक्षणों में एक अभिलक्षण ''भारत-आलोचना'' है। इसका तात्पर्य है भारत प्रत्येक अर्थ में – भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक, क्षेत्रीय उपव्यवस्था के मध्य में बना हुआ है। भौगोलिक रूप से, अपने विशाल भूमि क्षेत्रा के मध्य में अवस्थिति के कारण, भारत इस क्षेत्रा के अन्य राज्यों को जोड़ने वाला एक मात्रा बिन्दु है। सभी राज्यों के साथ इसकी सीमान्तक (भूमि अथवा समुद्र) सहभागिता है और अधिकांश को यह अपने से पृथक् करता है। अधिकांश राज्यों का इतिहास या तो भारत से जुड़ा हुआ है अथवा भारत में उसकी जड़ें हैं। इसका अर्थ है कि क्षेत्रीय इतिहास में इस तथ्य के कारण भारत विशालकाय दृष्टिगोचर होता है कि इसने कारगर ढंग से घटनाओं को प्रभावित किया और उन्हें मूर्त्तरूप दिया जो स्मरणातीत है। इसके अतिरिक्त, भारत सभी दक्षिण एशियाई राज्यों को सभ्यतामूलक गठजोड़ मुहैया करता है। इस प्रकार, इस क्षेत्रा के सामाजिक-आर्थिक और भाषाई मानचित्रा में 'भारतीयता' का मजबूत अंश है जो स्थानीय परम्पराओं से ओतप्रोत है और उनसे तालमेल रखता है। स्पष्टत:, इन राज्यों के सामूहिक व्यक्तित्व के विशाल संघटक भारतीय विरासत से आहरित हैं। अन्तत:, भारत की आर्थिक केन्द्रीयता इसकी सहायता करने और कुछ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करने की क्षमता के संदर्भ में भी समझी जा सकती है। इस बेहतर उदाहरण से इसका तथ्य भी उजागर होता है कि भारत के पास क्षेत्रीय आर्थिक समूहन के रूप में दक्षेस (SAARC) की सफलता का रहस्य है। इस क्षेत्रीय संरचना का प्रभाव है कि भारत अपने उन पड़ोसियों द्वारा प्रतिस्पर्धा में प्रभुत्व स्थल है जिनके हित निरपवाद रूप से भारत के हितों से टकराते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अधिकांश संघर्ष भारत और उसके तुरन्त निकट पड़ोसियों के मध्य हैं।

दक्षिण एशिया का दूसरा महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण इसका 'असममित' और 'पदानुक्रम सत्ता स्वरूप' है। भारत अब तक दक्षिण एशिया में (जनसंख्या और क्षेत्रा में) सबसे विशाल तथा (आर्थिक, प्रौद्योगिकीय और सैन्य बल में) सबसे बड़ा राज्य है। भारत दक्षिण एशिया में अपने पड़ोसी राज्यों में प्रत्येक से अलग-अलग और ''सबको एक साथ मिलाकर'' भी सबसे विशाल और बड़ा है। वास्तव में, इसकी असममिति इतनी अभिभूत है कि भारत के अन्य पड़ोसियों के बीच 'सत्ता संभाव्यता के महत्त्वपूर्ण मतभेद' धूमिल पड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप, पाकिस्तान जैसे देश भारत के साथ सत्ता की बराबरी के लिए प्रतिस्पर्धा चाहते हैं।

दक्षिण एशिया का तीसरा अभिलक्षण सदस्य राज्यों का ''आम उपनिवेशी अनुभव'' है। इस पर व्यापक रूप से सहमति है कि उपनिवेशवाद के उपरान्त काल में उपनिवेशी इतिहास ने कई संघर्षों के बीज बो दिए हैं। ऐसा उपनिवेशवाद को समाप्त करने की प्रक्रिया के कारण ही इतना अधिक घटित नहीं हुआ अपितु पृथक् समूहों और उनके राज्य-क्षेत्राों को आपस में जोड़ने की बल प्रयोग की प्रक्रिया के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण के विशिष्ट तरीके के कारण हुआ। ब्रिटिश उपनिवेशी शासन ने उपमहाद्वीप की क्षेत्रीय एकता स्थापित की: भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश समेकित ब्रिटिश राज के मूल में थे जिससे नेपाल और भूटान के परिधीय सम्बन्ध बने रहे तथा

श्रीलंका और मालदीव इस राज से स्वतंत्रा थे परन्तु उपनिवेशी सरकार के नियंत्राण में थे। ये सभी एक सर्वनिष्ठ भाग्य के सहभागी थे और अपनी निजी लागत पर साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए विवश थे। परन्तु यह सहयोजित भाग्य उस समय प्रबल व्यष्टिपरक हो गया जब ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ। उपनिवेशवाद के विखण्डन की प्रक्रिया से उपमहाद्वीप में क्षेत्राीय विखण्डन और बिखराव की प्रक्रिया आरंभ हुई। कई मामलों में, उपनिवेशवाद के उपरान्त राज्यों का गठन बकवास और अतर्कसंगत आधार पर हुआ, राज्यों का सीमांकन अपूर्ण रहा तथा कई जातियों और धार्मिक समूहों के हित और प्रास्थिति को परिभाषित नहीं किया गया। उपनिवेशवाद के उपरान्त दक्षिण एशिया इन उपनिवेशी पैतृक सम्पदाओं के साथ जीवित है जिनसे राज्यों के भीतर और इस क्षेत्रा के राज्यों के बीच विवादों और संघर्षों में बढ़ोत्तरी हो रही है।

२७.४ संघर्षों का स्वरूप

दक्षिण एशिया के देशों के बीच कई द्विपक्षीय समस्याएँ हैं। उनमें से कुछ सत्ता, सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप हैं। भारत और पाकिस्तान के बीच परम्परागत अस्त्रा निर्माण और परमाणुवीय प्रतिस्पर्धा को ऐसे उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। इसके अलावा दक्षिण एशिया में क्षेत्राीय और जल संसाधनों के लिए मुक्त द्विपक्षीय संघर्ष है। महत्त्वपूर्ण रूप से, क्षेत्रा के भारतीय मूल के स्वरूप के कारण ये संघर्ष भारत और इसके दक्षिण एशियाई पड़ौसियों के मध्य हैं।

अवधि और प्रबलता के आधार पर, दक्षिण एशिया में क्षेत्राीय संघर्ष दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं: दीर्घकालिक और परिधीय संघर्ष। दीर्घकालिक संघर्षों में भारत के पाकिस्तान के साथ विशेष रूप से कश्मीर और सियाचीन पर विवाद शामिल हैं। परिधीय संघर्ष वे हैं जो भारत और उसके छोटे-छोटे पड़ोसी राज्यों जैसे श्रीलंका के बीच हैं। पुन: प्रतिस्पर्द्धी क्षेत्रा के स्वरूप के संदर्भ में इनका आगे और वर्गीकरण किया जा सकता है: अधिकांश संघर्ष सीमाओं के सीमांकन से जुड़े हुए हैं। मात्रा कश्मीर पुन: संयोजनवादी विवाद के कारण विशिष्ट स्वरूप का है। भारत-पाक सीमा-विवाद इस अर्थ में एक बहु-कंटक मामला है कि दोनों देश एक ही समय में क्षेत्रा के एकाधिक अंश के लिए स्पर्द्धा में जुटे हैं। पाकिस्तानियों के अनुसार, भारत और पाकिस्तान के बीच यदि कश्मीर एक 'मूल मुद्दा' है, वहीं सियाचीन, कच्छ और सर क्रीक के पास अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के स्थायित्व के लिए निर्णायक मुद्दे हैं। भारत और श्रीलंका के बीच कच्चातिवू विवाद पर, कम से कम भारतीय पक्ष की तरफ से कम स्पर्द्धा हुई। इससे इसके समाधान का कार्य आसान हो गया।

२७.४.१ भारत-पाकिस्तान के क्षेत्रीय विवाद

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर, सियाचीन, कच्छ की खाड़ी और सर क्रीक क्षेत्रा के ऊपर चार प्रमुख विवाद हैं। इनमें से केवल कच्छ विवाद का समाधान हुआ है। कश्मीर का संघर्ष सबसे पुराना है जो इस महाद्वीप से अंग्रेजों की वापसी और १९४७ में भारत के विभाजन के समय आरंभ हुआ। आज़ादी के समय, भारत संघ के पास दो प्रकार के राज्य थे। ये ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों के राज्य थे। ब्रिटिश भारत के राज्यों के समेकन में कोई समस्या नहीं थी; वे या तो भारत का अथवा पाकिस्तान का हिस्सा बन गए। परन्तु रजवाड़ों से गंभीर समस्या मुखर हुई। जब ब्रिटिश क्राउन की परम सत्ता का सिद्धांत व्यक्त हुआ, लार्ड माउण्टबेटन ने रजवाड़ों से उनकी भौगोलिक संलग्नता और जनसांख्यिकीय संगठन के आधार पर भारत अथवा पाकिस्तान में शामिल होने का आग्रह किया। इसका अर्थ है कि हिन्दू बहुल क्षेत्रा भारत में शामिल हो सकते थे तथा मुस्लिम बहुल क्षेत्रा पाकिस्तान में जाने चाहिए। यहीं से कश्मीर समस्या का सूत्रापात हुआ। जम्मू एक कश्मीर के शासक हिन्दू (महाराजा हरी सिंह) थे परन्तु वहाँ की जनसंख्या का बहुमत मुस्लिम था। जहाँ तक क्षेत्रा का सम्बन्ध है, यह भारत और पाकिस्तान दोनों से जुड़ा हुआ था। महाराजा इनमें से किसी भी देश में शामिल होना नहीं चाहते थे। इस अस्थिर स्थिति को ध्यान में रखकर, पाकिस्तान ने अक्टूबर १९४७ में पुञ्छ में आरंभ हुए एक जनजातीय आन्दोलन की सहायता के लिए अपनी

सेनाएँ भेजीं। शीघ्र ही पाकिस्तान समर्थित विद्रोही बलों ने, महाराजा की विशेष प्रतिष्ठा और प्राधिकार को जोखिम में डालते हुए, राजधानी श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। चूँकि महाराजा के पास आक्रमण का प्रत्युत्तर देने के लिए कोई सैन्यबल नहीं था, अत: उन्होंने भारत से सैनिक सहायता की अपील की। प्रधानमंत्री नेहरू ने इसके लिए दो शर्तें रखीं: प्रथम, उन्होंने महाराजा से कश्मीरी राष्ट्रीय कान्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख मुहम्मद अब्दुल्ला से अनुमति माँगने को कहा। दूसरे, महाराजा को जम्मू एवं कश्मीर राज्य को भारत संघ में सम्मिलित करने की आवश्यकता थी बशर्ते अब्दुल्ला सम्मिलन विलेख को अपनी मंजूरी देते। इन दो शर्तों के पूरी हो जाने के बाद, नेहरू ने विद्रोहियों के दमन तथा पाकिस्तानी सेना को पीछे खदेड़ने के लिए अपनी सेनाएँ भेज दीं। तथापि, भारत की सफलता आंशिक थी। इसकी सेना विद्रोहियों को आगे बढ़ने से ही रोक पाई और उन्हें कश्मीर का एक तिहाई हिस्सा पाकिस्तान के लिए छोड़ना पड़ा। तत्पश्चात्, १ जनवरी १९४८ को, भारत ने यह मुद्दा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जिसने अप्रैल १९४८ में यह आग्रह करते हुए संकल्प पारित किया कि दोनों देश शामिल होने के प्रति लोक इच्छा जानने के लिए जम्मू एवं कश्मीर में जनमत के माध्यम से विवाद को निपटाएँ। इसने संघर्ष प्रबन्धन और समाधान की दीर्घकालिक प्रक्रिया की शुरुआत की नींव रखी जो युद्ध, विद्रोह और हिंसा के साथ उभय पक्ष में मौजूद हैं। अभी तक इसका परिणाम नकारात्मक रहा है। अगले अनुभाग में हम इनकी जाँच करेंगे।

सियाचीन के ऊपर विवाद प्रमुखत: कश्मीर संघर्ष से जुड़ा हुआ है। मुद्दे की विशिष्टता इस तथ्य में सन्निहित है कि सियाचीन हिमखण्ड अपने कठोर मौसमी हालात, अधिक ऊँचाई और ऊबड़-खाबड़ भूभाग के कारण विश्व में अप्रीतिकर क्षेत्राों में से एक क्षेत्रा है। यहाँ लगभग ७ मीटर तक प्रतिवर्ष भारी बर्फ गिरती है, लगभग ३०० किमी प्रति घंटे की रफ्तार से बर्फीले तूफान आते हैं और तापमान शून्य से ४० डिग्री नीचे चला जाता है। इसकी उत्कृष्ट ऊँचाई इस तथ्य से समझी जा सकती है कि भारत का बेस कैम्प उस स्थान पर है जो समुद्र तल से १२,००० फीट की ऊँचाई पर है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके आगे कुछ बेसों की ऊँचाई और अधिक है (यह १६,००० फीट से २२,००० फीट तक है)। यह क्षेत्रा हिमस्खलन के लिए संवेदनशील है। अनुमान लगाया जाता है कि ९५ प्रतिशत से अधिक भारतीय मौतें, उत्कृष्ट ऊँचाई, प्रतिकूल मौसम और अप्रीतिकर भूभाग के कारण होती हैं।

१९८०वें दशक के मध्य तक सियाचीन हिमखण्ड पर भारत अथवा पाकिस्तान का नियंत्राण नहीं था।१९४९ में सृजित भारत-पाकिस्तान युद्ध विराम रेखा ने स्पष्टत: किसी भी पक्ष को इस क्षेत्रा का निरूपण नहीं किया। नियंत्राण रेखा ने भी हिमखंड की स्थिति निर्धारित नहीं की। इस प्रकार इस क्षेत्रा का रेखांकन नहीं हो पाया। चूँकि यह क्षेत्रा वास्तविक नियंत्राण रेखा से परे 'अरेखांकित क्षेत्रा' में स्थित है, भारत और पाकिस्तान दोनों ने ही इस हिमखंड के ऊपर प्रतिस्पर्धात्मक दावे किए। यह स्पष्ट है कि पाकिस्तान NJ९८४२ से उत्तर-पूर्व दिशा में सीधी रेखा खींचने के लिए दबाव डाल रहा है। यह चीन के साथ अपनी सीमा पर काराकोरम दर्रा से गुजरती है। दूसरी तरफ, भारत काराकोरम रेंज के सुदूर दक्षिण में सालटोरो रेंज के साथ-साथ NJ९८४२ से उत्तर-उत्तर पश्चिम दिशा में यह रेखा खींचना चाहता है।

यूरोप और उत्तरी अमेरिका में प्रकाशित पर्वतारोहण मानचित्रों से १९७०वें दशक के अन्त में भारत को इस हिमखंड का पता चला। आरंभ में भारत ने किसी पर्वतारोहण अभियान की अनुमति नहीं दी जबकि पाकिस्तान ने इस क्षेत्रा के ऊपर वैधता प्राप्त करने के लिए ऐसे क्रियाकलाप की अनुमति दी और उसे प्रोत्साहित किया। तथापि, १९७८ में, भारत ने अपनी नीति में बदलाव किया। इसने पर्वतारोही अभियान के छद्म वेश में इस क्षेत्रा में अपनी सेना का ''सांग्रामिक टोही दल'' भेजा। पत्पश्चात् कई और अभियान किए तथा गर्मी में हिमखंड की गश्त की। आरंभ में पाकिस्तान ने भारतीय सेना के क्रियाकलापों का सैनिक विरोध नहीं किया परन्तु १९७८ से इसने इस हिमखंड में भारतीय मौजूदगी के प्रति कई विरोध किए। १९८३ में, पाकिस्तान ने हिमखंड में अपनी सैनिक टुकड़ियाँ रखे जाने का प्रयास किया। भारत ने १९८४ में हवाई मार्ग से अपनी सेनाओं की एक प्लाटून भेजकर पाकिस्तानी चाल से पहले उस पर कब्जा कर लिया और इस प्रकार हिमखंड पर कब्जा

करने वाला पहला देश बन गया। १९८४ से, पाकिस्तान नियमित रूप से भारतीय फौजों के ठिकाने नष्ट करने का प्रयास करता रहा है साथ ही, भारतीय सेना का उद्देश्य किसी भी कीमत पर इस क्षेत्रा पर नियंत्राण बनाए रखना रहा है। अनुघटित सैनिक भिड़न्त से भारी जन हानि हुई है और आर्थिक लागत भी बढ़ती जा रही है।

कच्छ की खाड़ी के ऊपर विवाद भारत और पाकिस्तान की आजादी के तुरन्त बाद खड़ा हो गया। कच्छ की खाड़ी पाकिस्तान के सिन्ध प्रदेश और भारत के गुजरात राज्य के बीच अवस्थित है। यह २३००० वर्ग किमी का दलदली क्षेत्रा है। ''नौवहन के लिए न तो पर्याप्त गीला और कृषि के लिए न पर्याप्त शुष्क'' यह क्षेत्रा दो भिन्न खाड़ियों में बँटा हुआ है। बड़ी खाड़ी और छोटी खाड़ी। बड़ी खाड़ी गुजरात के मध्य में है और १८००० वर्ग किमी में फैली हुई है। छोटी खाड़ी लगभग ५००० वर्ग किमी है जो कच्छ की खाड़ी को सिन्ध प्रदेश तक पहुँचाती है। १९४७ में, सिन्ध और कच्छ के बीच सीमा अन्तरराष्ट्रीय सीमा बन गई। विवाद उस समय प्रारंभ हुआ जब पाकिस्तान ने बड़ी खाड़ी के एक-तिहाई हिस्से (जो लगभग ३५०० वर्ग मील है) के ऊपर दावा किया। दावित क्षेत्रा २४वें उत्तरी अक्षांश के समान्तर फैला हुआ है जिसके बारे में तर्क दिया गया था कि यह हमेशा सिंध के नियंत्राण और प्रशासन के अधीन रहा है। भारत ने पाकिस्तान का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया कि कच्छ की सम्पूर्ण खाड़ी गुजरात के कच्छ क्षेत्रा का भाग थी। अपनी आजादी के कई साल बाद तक दोनों देशों ने कच्छ की खाड़ी पर अपने दावे और प्रतिदावे दुहराते हुए टिप्पणियाँ कीं और पत्रा विनिमय किए।

फरवरी १९५६ में विवाद को लेकर उस समय सैनिक हस्तक्षेप हुआ जब पाकिस्तानी बलों ने कच्छ की खाड़ी के आधे उत्तरी क्षेत्रा में छड बैट में प्रवेश किया। भारत ने अपनी सेनाएँ भेजकर इसका जवाब दिया। परन्तु पाकिस्तानी सैनिक पकड़ में नहीं आ सके। पाकिस्तान ने लुका-छिपी का खेल खेला। यह भारत का ध्यान विवाद की ओर खींचना चाहता था जिससे उसका कोई हल निकले। आगे चलकर विवादग्रस्त ऐतिहासिक तथ्यों का हवाला देकर अपने-अपने दावों और प्रतिदावों को दुहराते हुए पत्रा विनिमय होते रहे। अन्ततः एक पंचायत न्यायाधिकरण ने १९६८ में इस विवाद का समाधान किया।

सर क्रीक के ऊपर विवाद कच्छ की खाड़ी विवाद का हिस्सा बना रहा। जब अनुवर्त्ती विवाद का समाधान हुआ तो इस समाधान में सर क्रीक शामिल नहीं किया गया। क्रीक एक घटता-बढ़ता ज्वार-भाटीय जलमार्ग है तथा कच्छ की खाड़ी का एक १०० मीटर लम्बा नदमुख दलदल है। पाकिस्तान का मत था कि कच्छ-सिन्ध क्षेत्रा के सीमा विवाद में सर क्रीक शामिल था और उसने सम्पूर्ण सर क्रीक पर अपने क्षेत्रा के रूप में दावा किया। भारत ने पाकिस्तान का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि सर क्रीक के ऊपर कोई क्षेत्रीय विवाद नहीं था क्योंकि इसकी सीमा क्रीक के मध्य में सीमा स्तम्भ लगाकर भलीभाँति निश्चित हो चुकी थी। कच्छ विवाद के पंचाट के दौरान, भारत और पाकिस्तान दोनों न्यायाधिकरण के समक्ष उत्तर में सीमा विवाद को सीमित करने के लिए सहमत हो गए थे। दक्षिण में एक सहमतिप्राप्त सीमा थी। यह सर क्रीक से आरंभ होकर २४वें अक्षांश के समान्तर बढ़ती हुई पूर्वाभिमुख हो गई थी। तथापि, भारत का दृष्टिकोण था कि ''यह रेखा कच्छ की उत्तरी सीमा निर्धारित करती हुई तेजी से समकोण पर मुड़ती थी।'' पाकिस्तान इस रेखा को कच्छ की आधी खाड़ी पर दावे के लिए पूर्व की ओर और बढ़ाना चाहता था। भारत और पाकिस्तान की ओर से कुछ प्रयासों के बावजूद विवाद का समाधान नहीं हुआ है।

२७.४.२ कच्चातिवू के ऊपर भारत-श्रीलंका विवाद

भारत और श्रीलंका के बीच क्षेत्रीय विवाद पॉक स्ट्रेट्स में एक छोटे उजाड़ द्वीप कच्चातिवू पर था। सभी ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि यह द्वीप तमिलनाडु के राजा रामनाद की जमींदारी का एक हिस्सा था। इसी के साथ श्रीलंका के पास यह दर्शाने के लिए कोई प्रमाण नहीं था कि द्वीप उससे संबंद्ध था। फिर भी श्रीलंकाई सरकार ने इस आधार पर दावा किया कि इस द्वीप

पर उसका स्वामित्व गुप्त रूप से ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। जबकि श्रीलंका के साथ असहमत होते हुए अनुवर्त्ती भारतीय नेताओं ने क्षेत्रीय विवाद के प्रति उदासीनता और नगण्यता जाहिर की। नेहरू और उसके अनुवर्त्ती नेताओं ने द्विपक्षीय सम्बन्धों के हित में विवाद की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। यह उनके विभिन्न कथनों से स्पष्ट है। नेहरू ने वस्तुत: श्रीलंकाई तर्काधार को उस समय ठुकरा दिया जब उसने कहा कि रामनाद के राजा के जमींदारी हक कच्चातिवू द्वीप पर संप्रभुता नहीं दर्शाते। उसने समस्या के प्रति अपनी अनभिज्ञता और नैमित्तिक दृष्टिकोण उस समय प्रदर्शित किया जब उसने कहा कि वह विवादग्रस्त द्वीप की अवस्थिति के बारे में आश्वस्त नहीं है। वह श्रीलंका की संवेदना के प्रति अति सतर्क प्रतीत हुआ जब उसने यह कहा कि इस मुद्दे में कोई 'राष्ट्रीय प्रतिष्ठा' नहीं थी। इसी प्रकार, द्विपक्षीय वार्ता पर प्रतिकूल प्रभाव की आशंका से, इन्दिरा गाँधी कच्चातिवू पर भारत के समर्थन में मुद्दे को उठाने की इच्छुक नहीं थीं जो उनके मतानुसार, ''बिना सामरिक महत्व की विषम बाधा'' थी। दो नेताओं के बीच अन्तर केवल इतना था कि यद्यपि नेहरू ने इस मुद्दे पर मुलायम रुख अपनाया, उन्होंने द्वीप के ऊपर अपनी संप्रभुता की मान्यता के लिए श्रीलंका के साथ कोई करार नहीं किया। परन्तु १९७४ में इन्दिरा गाँधी ने तमिलनाडु की इच्छाओं और हितों के विरुद्ध करार पर हस्ताक्षर किए थे।

२७.४.३ जल विभाजन पर संघर्ष

जल विभाजन को लेकर भारत और पाकिस्तान तथा भारत और बांग्लादेश के बीच संघर्ष पैदा हुए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारत और नेपाल के बीच जल विभाजन पर कोई संघर्ष नहीं हुआ है; इनके बीच प्रमुख मुद्दा जल संसाधनों के विकास (जल-विद्युत, सिंचाई का बाढ़ नियंत्राण, आदि) से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, संघर्ष समाधान के संदर्भ में, उन संघर्षों पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है जिनमें जल विभाजन का मुद्दा अन्तर्ग्रस्त था। पाकिस्तान और बांग्लादेश के साथ भारत के विवाद विद्यमान मामले हैं।

क्षेत्रीय संघर्ष के अलावा, भारत और पाकिस्तान के बीच सिन्ध नदी के जल विभाजन पर एक प्रमुख विवाद था। भारत के विभाजन के समय सिन्धु जल व्यवस्था के बँटवारे की आवश्यकता थी क्योंकि विभाजन रेखा सिन्धु जल तंत्रा के आर-पार गुजरती थी। सिन्धु जल तंत्रा अविभाजित पंजाब में कृषि विकास के लिए जीवन रेखा थी। सिन्धु जल तंत्रा में छह नदियाँ शामिल थीं: झेलम, चेनाब और पश्चिम में स्वयं सिन्धु; रावी, व्यास और सतलुज। भारत और पाकिस्तान के हितों का टकराव हुआ क्योंकि दोनों देशों ने जल तंत्रा के बड़े हिस्से की माँग की। यह मुद्दा उस समय और जटिल हो गया जब विभाजन के बाद भारत-पाकिस्तान के बीच युद्ध हुआ तथा बाद के वर्षों में दोनों देशों के बीच रिश्ते तनावग्रस्त होते गए। इस प्रकार, दीर्घकालिक द्विपक्षीय वार्ता से उस समय तक कोई हल नहीं निकला जब तक विश्व बैंक ने १९६० में एक सौदेबाजी तय करने के लिए अपने अच्छे कार्यालयों का विस्तार नहीं किया।

गंगाजल विवाद सिन्धु जल विवाद की तुलना में काफी अधिक जटिल तथा पेचीदा था तथा प्रतिद्वन्द्वी दलों – भारत और बांग्लादेश – ने वार्ता के विभिन्न चरणों में दुराग्रहपूर्ण रवैया अपनाया। मुद्दा महज गंगाजल बँटवारे का ही नहीं था बल्कि अनुत्पादनकारी मौसम में (जनवरी व मई के बीच) जब बहाव कम रहता है, उसका संवर्धन करने का भी था। यह ध्यातव्य है कि भारत एक उच्च तटवर्ती राज्य है और बांग्लादेश एक निचला तटवर्ती राज्य है। बांग्लादेश का तर्क था कि भारत हमेशा गंगा जल के फरक्का में एकपक्षीय दिक् परिवर्तन में अन्तर्ग्रस्त रहा जिससे निचले तटवर्ती राज्य के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

दूसरी तरफ भारत ने, यह मानते हुए कि गंगा एक भारतीय नदी है, बल दिया कि गंगा जल का एक अंश फरक्का बाँध से भागीरथी/हुगली का विपथन कोलकाता पत्तन को खराब होने से बचाने तथा कोलकाता को पेय और औद्योगिक जल आपूर्त्ति की गंदगी से संरक्षण के लिए आवश्यक था। बांग्लादेश ने हमेशा सम जल विभाजन सूत्रा पर बल दिया जिसे भारत में उपजाऊ क्षेत्रा और बांग्लादेश

की तुलना में अधिक जनसंख्या के होने के कारण भारत ने इसे तर्कसंगत नहीं माना। जहाँ तक संवर्धन का सवाल है, अनुत्पादन शील सत्रा के दौरान जल प्रवाह के संवर्धन के लिए रक्षा उपायों पर हमेशा तीव्र विरोध रहा। गत समय में, भारत का प्रस्ताव था कि जल-अतिरेक वाली ब्रह्म पुत्रा नदी से गंगा में जल प्रवाह बढ़ाने के लिए जोगीघोपा से फरक्का तक बांग्लादेश से होते हुए एक नहर का निर्माण किया जाए। दूसरी ओर, बांग्लादेश ने प्रस्ताव किया कि नेपाल में सात ऊँचे बाँधों के पीछे मानसून जल प्रवाह का भंडारण करके गंगाजल तंत्रा के भीतर जल संवर्धन किया जाए। दोनों पक्ष एक दूसरे से असहमत थे और इस प्रकार, कई राजनीतिक वार्तालापों के बावजूद समस्या का समाधान उस समय तक नहीं हुआ जब तक १९९६ में करार नहीं हुआ।

बोध प्रश्न १

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई-अंत में संकेत देखें।

१) हग मिआल के अनुसार संघर्ष समाधान के दो मौलिक सिद्धान्त हैं:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

२) पंचाट क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

२७.५ संघर्षों का प्रबन्धन और समाधान

दक्षिण एशिया में सरकारों ने अपने संघर्षों के विभिन्न मुद्दों पर सामयिक समाधान के तीन विकल्पों का अनुसरण किया है – पंचाट, मध्यस्थता और द्विपक्षीय वार्तालाप। पहले दो विकल्प गत समय में अपनाए गए थे और तीसरा विकल्प एकमात्रा विकल्प है जिसे भारत द्वारा प्राथमिकता दी गई है यद्यपि पाकिस्तान और बांग्लादेश जैसे देश अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थता चाहते हैं। अब, भारत में अपने किसी भी पड़ोसी के साथ अपने द्विपक्षीय विवादों पर किसी तीसरे दल द्वारा किसी भी तरह की मध्यस्थता अथवा पंचाट का विरोध किया जाता है और भारत द्विपक्षीय वार्तालाप पर बल देता है– संघर्ष समाधान का ऐसा मानदण्ड जिसमें अन्य बदलाव लाना चाहते हैं। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि गत समय में कुछ विवादों के समाधान में पंचाट अथवा मध्यस्थ के रूप में तीसरे दल की अन्तर्ग्रस्तता एकबारगी सभी के लिए सफल रही।

२७.५.१ पंचाट

इस प्रयोजनार्थ गठित तीन सदस्यीय न्यायाधिकरण द्वारा कच्छ की खाड़ी के विवाद की मध्यस्थता की गई थी। भारत ने अपने प्रतिनिधि के रूप में एले बेबलर (पूर्ववर्त्ती यूगोस्लाविया के संवैधानिक न्यायालय के एक न्यायाधीश) को अपना प्रतिनिधि नामित किया था। पाकिस्तान ने नसरूल एन्तेज़म (एम ईरानी राजनयज्ञ) को नामित किया। संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने गुन्नर लैगरग्रेन (स्वीडिश उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश) को न्यायाधिकरण का अध्यक्ष बनने के लिए चुना। न्यायाधिकरण ने लगभग १०,००० पृष्ठ के दस्तावेजों और ३५० मानचित्रों की जाँच की। अपने दावों के समर्थन में भारत ने २५० दस्तावेज तथा पाकिस्तान ने ३५० दस्तावेज पेश किए। न्यायाधिकरण ने १७१ बैठकें कीं और १९ फरवरी १९६८ को जेनेवा में अपना निर्णय दिया। निर्णय दो मतों के बहुमत से हुआ क्योंकि भारतीय नामिती ने विरोध में मत दिया। इस न्यायाधिकरण ने पाकिस्तान को खाड़ी के उत्तरी भाग में लगभग ९०० वर्ग कि.मी. क्षेत्रा दे दिया। यद्यपि विवादग्रस्त क्षेत्रा का बचा हुआ हिस्सा भारत के पास था फिर भी यह न्यायाधिकरण के पंचाट से खुश नहीं था। भारत ने इसे कानून सम्मत निर्णय की बजाए राजनीति प्रेरित बताया। चूँकि वचनबद्धता और प्रतिभूति के कारण, न्यायाधिकरण के निर्णय पर प्रश्नचिह्न नहीं लग सकता था, भारत ने काफी आत्मसंयम के साथ इसे स्वीकार कर लिया। इस अनुभव के आधार पर इसने अपने पड़ोसियों के साथ किसी भी अन्तरराष्ट्रीय विवाद के पंचाट के लिए कभी भी सहमति नहीं दी है।

२७.५.२ मध्यस्थता

दक्षिण एशिया में संघर्ष प्रबंधन के इतिहास में, १९६०वें दशक तक अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थता ने महत्त्वपूर्ण रणनीति तैयार की। यद्यपि अन्य दक्षिण एशियाई देशों का प्रथम रुझान तीसरे दल द्वारा मध्यस्थता का था, भारत ने अनिच्छापूर्वक इसे स्वीकार किया। चूँकि भूमंडलीय सत्ता प्रतिस्पर्धा ने दक्षिण एशिया में शान्ति बनाए रखने के लिए बाध्यताएँ लागू कीं, संयुक्त राज्य और सोवियत संघ दोनों ने भारत और पाकिस्तान क्षेत्राों को अपने संघर्षों के समाधान के लिए प्रेरित किया। १९६६ में, भारत-पाकिस्तान युद्ध के मद्देनज़र पूर्ववर्त्ती सोवियत संघ ने दो देशों के बीच ताशकंद समझौते की मध्यस्थता की। युद्ध समाप्ति के अलावा, करार में शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने का प्रावधान किया गया था, तथापि, इससे शत्राुता का अन्त नहीं हुआ।

सर्वाधिक सफल मध्यस्थता भारत और पाकिस्तान के बीच सिन्धु जल विवाद के लिए की गई। १९६० में इसका समाधान करने के लिए विश्व बैंक ने अपने अच्छे कार्यालयों का विस्तार किया। दोनों देशों द्वारा की गई संधि के अनुसार, पाकिस्तान को तीन पश्चिमी नदियाँ – झेलम, चेनाब और सिंध मिलीं तथा भारत को तीन पूर्वी नदियाँ – रावी, व्यास और सतलुज। नदियों के समान बँटवारे ने विवाद हल करने का काम बहुत आसान बना दिया गया। महत्त्वपूर्ण रूप से, संधि में भारत और पाकिस्तान प्रत्येक के लिए एक आयुक्त वाले स्थायी सिंध आयोग का गठन किया गया था। आयोग भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में तनाव और परेशानियों के दौरान भी नियमित बैठक करता है और दोनों देशों का दौरा भी करता है। संधि के कार्यान्वयन पर सभी मतभेदों के समाधान के लिए आयोग को शक्ति प्रदान की गई है और यदि आयोग विफल रहता है तो मामला सरकारों के पास भेज दिया जाता है। यदि सरकारों के बीच कोई करार नहीं है तो मामले पर तृतीय दल द्वारा पंचाट के लिए कार्यवाही की जाती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सन्धि के पंचाट उपखंड को अभी तक लागू नहीं किया गया है। संधि भारत और पाकिस्तान के बीच कई युद्धों और तनावों के बावजूद भली-भाँति कार्य कर रही है।

कश्मीर विवाद १९५० और १९५८ के मध्य संयुक्त राष्ट्र द्वारा असफल मध्यस्थता की स्थिति का प्रतीक है। १९४८ में, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने शान्ति की बहाली और विवाद का समाधान करने के लिए जनमत की व्यवस्था करने के लिए एक पाँच सदस्यीय मध्यस्थता आयोग नियुक्त किया जिसे भारत और पाकिस्तान पर संयुक्त राष्ट्र आयोग के नाम से जाना जाता है। अगस्त १९४८ में भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध विराम और युद्ध बन्दी के क्षेत्रा से अपनी सेनाएँ वापस बुलाने

तथा पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में स्थानीय बलों के नि:शस्त्रीकरण पर सिद्धांतत: सहमत हो गए थे। संयुक्त राष्ट्र ने कश्मीर में लोगों की इच्छा जानने के लिए जनमत के लिए भारत की सहमति प्राप्त कर ली थी परन्तु १९४९ में भारत ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। आयोग ने लगभग दो साल तक काम किया और सुरक्षा परिषद् को तीन अन्तरिम रिपोर्टें पेश कीं। तथापि, इससे भारत और पाकिस्तान विवाद को निपटाने में सहमति के लिए कहीं भी निकट नहीं आए। दोनों देशों ने जनमत और असैनिकीकरण प्रस्तावों की अलग-अलग व्याख्या की। इन हालातों में एक सुझाव दिया गया था कि विवाद को पंचाट के लिए भेज दिया जाना चाहिए। भारत इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुआ। इसी समय, पाकिस्तान कश्मीर के विभाजन के विचार के पक्ष में नहीं था। मध्यस्थता में प्रगति न होने से निराश होकर, आयोग के कुछ सदस्यों ने समस्या को भारत और पाकिस्तान द्वारा द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से हल करने के लिए छोड़ देने का विचार किया। १९५८ तक संयुक्त राष्ट्र मध्यस्थता अप्रभावी रही और वस्तुत: उन्होंने इसे छोड़ दिया था।

२७.५.३ द्विपक्षीय वार्तालाप

संघर्ष समाधान के लिए भारत का सर्वाधिक प्राथमिकता वाला स्वरूप द्विपक्षीय वार्तालाप है। हाल ही में, यही सबसे प्रभावी तरीका रह गया है क्योंकि भारत ने,जो दक्षिण एशिया के लगभग सभी संघर्षों और प्रतिद्वन्द्विताओं में प्रमुख दल है, पंचाट और मध्यस्थताओं को ठुकरा दिया है। भारत के पड़ोसी इसे बदलने में असमर्थ हैं जिसे वे शान्ति प्रक्रिया के लिए उस भारतीय मन:स्थिति के रूप में वर्णन करते हैं जो व्यावहारिक रूप से क्षेत्रीय अभिगम बन चुकी है। शिमला समझौता १९७२ में सफल द्विपक्षीय वार्तालापों का परिणाम है। इसने संघर्ष समाधान के लिए द्विपक्षीयवाद की सुसंगतता पर जोर दिया है तथा भारत और पाकिस्तान से शान्ति प्रक्रिया के लिए किसी भी प्रकार की बाहरी अन्तग्रस्तता की माँग न करने की बात कही है। यह कहना ठीक होगा कि द्विपक्षीय अभिगम के बारे में भारत के पड़ोसियों की आपत्ति के बावजूद इसे सफलतापूर्वक अथवा विफलतापूर्वक कई संघर्षों में आजमाया गया है।

भारत-श्रीलंका के क्षेत्रीय विवाद और भारत की बांग्लादेश के साथ गंगाजल विवाद पर सफल वार्ताएँ हुई। भारत और श्रीलंका के नेताओं के बीच दीर्घकालिक वार्ताओं के क्रम में दोनों देशों ने २६ जून १९७४ को एक करार पर हस्ताक्षर किए जिसके तहत भारत कच्चातिवू द्वीप पर श्री लंका के दावे को मानने को सहमत हो गया। संभवतया यह बहुत कम उदाहरणों में से एक था जहाँ भारत ने अपने उस क्षेत्रा के छोटे से हिस्से का अभ्यर्पण कर दिया था जिस पर ऐतिहासिक साक्ष्य के कारण उसकी मालिकयत का सही दावा था। भारत के पड़ोस की सरकार को परिष्कृत करने और मित्रा बनाने की यह एक असाधारण हलचल थी। यद्यपि कच्चातिवू विवाद का समाधान हो गया था तथापि भारत-श्रीलंका के आस-पास अधोजलीय मछलियों के भारी भंडार से आकर्षित होकर तमिलनाडु के कई मछुआरे अक्सर भारतीय सीमा के पार चले जाते हैं और श्रीलंका की नौसेना द्वारा या तो उन्हें गोली मार दी जाती है अथवा बन्दी बना लिया जाता है।

दीर्घकालिक वार्ताओं और कई अल्पकालिक करारों ने गंगाजल विवाद को विशेष रूप से प्रकट किया। अन्तत: इसका समाधान १२ दिसम्बर १९९६ को हुआ जब भारत और बांग्लादेश ने गंगाजल के बँटवारे के लिए एक संधि पर हस्ताक्षर किए। यह संधि ३० साल के लिए वैध है और इसका नवीनीकरण किया जा सकता है यदि दोनों देश ऐसा करने के इच्छुक हों। यदि वे चाहें तो प्रत्येक पाँच साल अथवा दो साल के अन्त में संधि की समीक्षा कर सकते हैं। इस संधि में किया गया समाधान प्रविधिज्ञ समाधान की बजाए राजनीतिक समाधान अधिक था। यह दोनों की कथित स्थितियों पर उनके द्वारा किए गए तालमेल का एक अनुभव था। संधि में अपनाया गया जल विभाजन सूत्रा निचले सिरे पर बराबर के सिद्धांत (५०:५०) अर्थात् अनुत्पादनशील सत्रा प्रवाह के बराबर विभाजन, पर आधारित है। ऊपरी सिरे पर हल्का सा अन्तर है। जब जल प्रवाह ७५,००० क्यूसैक हो, भारत को ४०,००० क्यूसैक जल मिलेगा और शेष बांग्लादेश को जाएगा। संधि में जल प्रवाह पर परामर्श और उसके अनुश्रवण के लिए यंत्रावत् प्रावधान है। यह दोनों देशों की संतुष्टि के लिए भली-भाँति कार्य कर रही है।

द्विपक्षीय वार्ताएँ भारत के पाकिस्तान के साथ क्षेत्रीय विवादों में विफल रही हैं। कई अवसरों पर, कश्मीर विवाद १९५३ से बिना किसी सफलता के द्विपक्षीय बातचीत में मुखर हुआ है। तीन प्रमुख उच्चस्तरीय बातचीत १९५० और १९६०वें दशक में हुईं। इनमें से पहली बातचीत जुलाई-अगस्त १९५३ में कराची और नई दिल्ली में आयोजित की गई। अगस्त १९५३ में दोनों नेताओं ने जम्मू एवं कश्मीर के लोगों की इच्छाओं के निर्धारण के लिए एक स्वच्छ और निष्पक्ष जनमत के लिए अपनी इच्छा दोहराई। इस संदर्भ में, उन्होंने जनमत प्रशासक की नियुक्ति की। तथापि, द्विपक्षीय सुरक्षा मुद्दे पर मतभेद होने के कारण, वार्ताएँ दिसम्बर १९५३ में बीच में ही बन्द हो गईं। पुन: दोनों देशों ने १४ मई को वार्ता शुरू की जो १८ मई तक चली। बातचीत के इस दौर में कोई प्रगति नहीं हुई। तथापि, सप्ताहों की वार्ता के भीतर, भारत और पाकिस्तान ने वार्तालाप आयोजित करने में गम्भीर न होने के कारण एक-दूसरे पर आरोप लगाए। तीसरे दौर में, दिसम्बर १९६२ और मई १९६३ के दौरान बातचीत के छह दौर चले। इन वार्तालापों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि भारत कश्मीर में भारतीय कब्जे वाले क्षेत्रा का लगभग १५०० वर्ग मील छोड़ने को तैयार हो गया था। बदले में, उसने शेष क्षेत्रा के लिए पाकिस्तान की मान्यता की माँग की। पाकिस्तान ने पेशकश ठुकरा दी। यह सम्पूर्ण कश्मीर घाटी को चाहता था। तदोपरान्त, ताशकन्द (१९६६) और शिमला (१९७२) में वार्ताओं के दौरान कश्मीर मुद्दा संक्षिप्त में चर्चा में आया।

सियाचीन संघर्ष पर, १९८६ से उच्चस्तर पर वार्ताओं के कई दौर चले। १९८९ और १९९२ की वार्ताओं में कुछ प्रगति हुई परन्तु विवाद का समाधान नहीं हो पाया। जून १९८९ में भारत और पाकिस्तान के रक्षा मंत्रियों के बीच बातचीत में, दोनों पक्ष संघर्ष के अवसर कम करने तथा सेना के उपयोग से बचने के लिए बलों के पुनर्नियोजन पर निपटान तक पहुँचने के लिए सहमत हो गए। नवम्बर १९६२ में विशिष्ट प्रगति हुई जब यह सूचना दी गई कि भारत और पाकिस्तान ने एक करार का मसौदा तैयार किया था जिसमें सैनिकों को मुख्य दर्रों से नई तैनाती के लिए पारस्परिक वापसी तथा असैनिक क्षेत्रा के गठन पर बल दिया गया था। वस्तुत:, यह दोनों पक्षों की स्थिति में बदलाव किए बिना शान्ति क्षेत्रा गठित करने का विचार था। तथापि, आन्तरिक राजनीतिक दबावों और करार के मसौदे के कुछ उपबंधों में विवेचना के ऊपर असहमति से इसे पूरी तरह छोड़ दिया गया।

तत्पश्चात्, सभी मुद्दे संयुक्त वार्ता प्रक्रिया का मुद्दा बन चुके हैं जिससे संघर्ष समाधान की प्रक्रिया के रूप में पुन: एक बार द्विपक्षवाद अमल में आ चुका है। संयुक्त वार्ता इन्द्र कुमार गुजराल सरकार द्वारा ९०वीं सदी के मध्य में पेश की गई थी। दुर्भाग्य से, प्रक्रिया मूर्त रूप नहीं ले पाई और सितम्बर १९९८ तक इसकी भावना और गहरा गई जब दोनों प्रधानमंत्रियों वाजपेयी और नवाज शरीफ़ के बीच एक करार हुआ जिसमें शान्ति और सुरक्षा का वातावरण तैयार करने तथा जम्मू एवं कश्मीर सहित सभी लम्बित द्विपक्षीय मुद्दों के समाधान को रेखांकित करके विशेष महत्त्व दिया गया था। इससे नवम्बर १९९८ में द्विपक्षीय वार्ता को पुन: आरंभ किए जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया। संयुक्त वार्ता का उद्देश्य व्यापक रूप से द्विपक्षीय सम्बन्धों में सुधार करना, विश्वास और भरोसे का निर्माण करना, सहयोग की स्थायी रूपरेखा तैयार करना और सभी लम्बित मुद्दों पर बातचीत करना था। इस संवाद प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण पहलू सियाचीन विवाद पर रक्षा सचिव स्तर की वार्ता थी जिसमें दोनों पक्षों ने अपनी ज्ञात स्थितियों को दोहराया। तनाव और शत्रुता को समाप्त करने की दृष्टि से, भारतीय पक्ष ने सियाचीन में युद्ध विराम पर करार का प्रस्ताव किया, तत्पश्चात् सेना को हटाने अथवा तैनात करने पर वार्ताएँ आरंभ हो सकीं। परन्तु पाकिस्तान का रुख प्रस्ताव के पक्ष में प्रतीत नहीं हुआ। बातचीत के लिए दूसरा मुद्दा सर क्रीक और सामुद्रिक सीमा निर्धारण था और यह भारत के महासर्वेक्षक और पाकिस्तान के बीच तय हुआ था। यह १९६९ से तकनीकी और सरकारी दोनों स्तरों पर की गई चर्चाओं के अनुसरण में था; अन्तिम दौर १९९२ में सम्पन्न हुआ। बातचीत के दौरान नाटकीय ढंग से दोनों देशों की विरोधी स्थितियाँ प्रकट हुईं: भारत सीमा के अविवादित हिस्से पर ध्यान केन्द्रित किया जाना था परन्तु पाकिस्तान ने इसके समाधान के लिए निश्चित मत की माँग की। भारत ने भी प्रस्ताव रखा कि सर क्रीक के ऊपर विवाद का समाधान करने से पहले भी समुद्र की ओर से सामुद्रिक सीमा का परिसीमन किया जा सकता था परन्तु पाकिस्तान इसके लिए सहमत नहीं हुआ।

लाहौर घोषणा में भी द्विपक्षीय अभिगम की सुसंगतता को रेखांकित किया गया है। इसमें शान्ति प्राप्ति के लिए कतिपय नियामक उपाय के लिए प्रावधान था। सभी द्विपक्षीय मुद्दों के समाधान के लिए अपने प्रयासों को आगे बढ़ाने के अलावा, भारत और पाकिस्तान एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में दखल न करने, अपनी संयुक्त और समेकित बातचीत प्रक्रिया को 'आगे बढ़ाने', आतंकवाद की उनकी भर्त्सना की पुन: पुष्टि करने तथा मानवीय अधिकारों और मौलिक स्वतंत्राताओं को प्रोत्साहित करने और उसके संरक्षण के लिए सहमत हो गए। मार्च १९९९ में, पाकिस्तान के विदेश मंत्राी सरफरान अजीज और भारत के विदेश मंत्राी, जसवंत सिंह ने ''लाहौर निर्णयों'' पर अमल करने के लिए व्यावहारिक रूपरेखा का परिकलन किया। परन्तु कारगिल में युद्ध से सम्पूर्ण शान्ति प्रक्रिया उलट गई। २००४ में प्रधानमंत्राी अटल बिहारी वाजपेयी की पाकिस्तान यात्राा से संयुक्त बातचीत प्रक्रिया को पुन: एक अवसर दिया गया है। कहा जाता है कि जब तक कश्मीर मुद्दा रहेगा, संघर्ष समाधान के लिए द्विपक्षीय तरीके पर बल देने के लिए मानवीय प्रयासों को भारत और पाकिस्तान के बीच शान्तिनिर्माण प्रक्रिया में संयुक्त राज्य को शामिल किए जाने की पाकिस्तान की विशिष्ट इच्छा वाली बहुपक्षीय पहल की माँग द्वारा चुनौती दी जाती रहेगी।

बोध प्रश्न २

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई-अंत में संकेत देखें।

१) कॉलम 'क' में सूचीबद्ध विवादों का उनके समाधान के लिए कॉलम 'ख' में सूचीबद्ध अपनाए गए तरीकों के साथ मिलान करें।

	क		**ख**
अ)	कच्छ खाड़ी विवाद	i)	द्विपक्षीय वार्तालाप
ब)	सिन्धु नदी विवाद	ii)	मध्यस्थता
स)	गंगाजल विवाद	iii)	पंचाट

२) संघर्ष समाधान के लिए भारत का सबसे पसंदीदा तरीका क्या है और क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

२७.६ सारांश

इस इकाई में हमने देखा है कि दक्षिण एशिया एक संघर्षग्रस्त क्षेत्रा है। इस क्षेत्रा की विशेष लाक्षणिक स्थिति के परिणामस्वरूप, ये संघर्ष भारत और उसके दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के बीच हैं।

जैसा कि हमने देखा, इस क्षेत्रा में क्षेत्राीय और जल विभाजन को लेकर मुक्त द्विपक्षीय संघर्ष है। १९६० से, जबकि संघर्ष प्रबन्धन के सभी तीनों तरीकों पंचाट, मध्यस्थता और द्विपक्षीय वार्तालाप को कुछ सफलता के साथ आजमाया गया है, भारत ने पंचाट और मध्यस्थता को अस्वीकार कर दिया

है और अपने पड़ोसियों के साथ द्विपक्षीय वार्तालाप के माध्यम से संघर्षों के समाधान को प्राथमिकता दी है। शान्ति निर्माण के लिए भारतीय मनोस्थिति व्यावहारिक तौर पर क्षेत्रीय सोच बन चुकी है। भारत-श्रीलंका क्षेत्रीय विवाद और भारत-बांग्लादेश गंगाजल विवाद का द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से सफलतापूर्वक समाधान हो गया था। तथापि, क्षेत्रीय विवादों को निपटाने के लिए पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय वार्ता का अभी तक कोई परिणाम नहीं निकला है। परन्तु झुंझलाहट में आकर शान्ति निर्माण प्रयासों को नहीं छोड़ा जा सकता है। इन उद्भूत समस्याओं का तुरन्त कोई समाधान नहीं है तथा शान्ति निर्माण की प्रक्रिया उस समय तक जारी रहनी चाहिए जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाते। विश्वभर का अनुभव है कि सफलता मात्रा प्रक्रिया से तथा कटु विफलताओं के फलस्वरूप प्राप्त होती है। दक्षिण एशियाई देश इस वास्तविकता को महसूस करते हैं; शान्ति प्रक्रियाओं में रुकावटें सामान्यत: संघर्ष प्रबन्धन में उनके हित को कम नहीं आँक सकती हैं।

२७.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

बोस, सुनन्दा (१९९७), *दि चेलेन्ज इन कश्मीर: डिमोक्रेसी, सेल्फ डिटरमिनेशन एण्ड इण्टरनेशनल पीस,* दिल्ली, सेज़ पब्लिकेशन।

गांगुली, सुमित (१९८६), *दि ऑर्गिन्स ऑफ वॉर इन साउथ एशिया: इण्डो-पाकिस्तान कॉनफ्लिक्ट सिंस १९४७,* बाउल्डर, वेस्टव्यू प्रेस।

गुलाटी, निरांजन, (१९७३), *इण्डस वाटर ट्रीटी: एन एक्सर्साइज़ इन इण्टरनेशनल मीडिएशन,*बम्बई, एलाइड पब्लिशर्स।

राघवन, वी.आर. (२००२), *सियाचीन: कॉनफ्लिक्ट विदआउट एण्ड,* न्यू दिल्ली, पैंग्विन बुक्स।

सहादेवन, पी. (२००१), *कॉनफ्लिक्ट एण्ड पीसमेकिंग इन साउथ एशिया,* दिल्ली, लांसर्स

२७.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न १

१) प्रथम, दोनों दलों को उस परिणाम से संतुष्ट नहीं होना चाहिए जो उनके द्वारा महसूस की जाने वाली जरूरतों और हितों की पूर्ति करता है और दूसरे, किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं होना चाहिए।

२) पंचाट न्यायनिर्णयन की विशाल प्रक्रिया का एक अंग है। संघर्ष समाधान के इस तरीके से, संघर्ष करने वाले दल विवाद को निष्पक्ष-न्यायाधिकरण या अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के पास भेजते हैं और उसके निर्णय के अनुपालन के लिए सहमत होते हैं।

बोध प्रश्न २

१) अ - iii, ब - ii, और स - प।

२) यद्यपि, १९६०वें दशक से, भारत अपने पड़ोसियों के साथ संघर्षों के समाधान के लिए सभी तरीके अपनाने को इच्छुक था, अब इसने संघर्षों के समाधान के लिए द्विपक्षीय वार्तालापों पर बल दिया है। कच्छ की खाड़ी पर न्यायाधिकरण का निर्णय भारत को रास नहीं आया। पचासवें दशक में भारत और पाकिस्तान के बीच विवाद हल करने में अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थता की विफलता के चलते भारत ने अपने पड़ोसियों के साथ संघर्षों के साथ समाधान के लिए पंचाट और अध्यक्षता को अस्वीकार कर दिया।

EPS -15, दक्षिण एशिया: अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति

खंड १ दक्षिण एशिया: क्षेत्रीय स्वरूप

इकाई १ दक्षिण एशिया में राष्ट्रवाद और स्वतंत्राता-संग्राम

इकाई २ मानव विकास का पार्श्व-चित्रा

खंड २ राज्य रूपरेखा: भारत

इकाई ३ भारत विश्व सत्ता ढाँचे में

इकाई ४ भारत विश्व आर्थिक व्यवस्था में

इकाई ५ भारत और उसके पड़ोसी

खंड ३ राज्य रूपरेखा: पाकिस्तान

इकाई ६ पाकिस्तान की राजनीति की संरचनाएँ एवं प्रक्रियाएँ

इकाई ७ पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था एवं समाज

इकाई ८ पाकिस्तान में सैनिक शासन एवं राजनीति

खंड ४ राज्य रूपरेखा: बांग्लादेश

इकाई ९ बांग्लादेश में राजनीतिक संरचना एवं प्रक्रियाएँ

इकाई १० बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था एवं समाज

खंड ५ देश जीवन-परिचय: नेपाल, भूटान

इकाई ११ नेपाल में राजनीतिक प्राधार एवं प्रक्रियाएँ

इकाई १२ नेपाल में अर्थव्यवस्था और समाज

इकाई १३ भूटान: अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति

खंड ६ राज्य रूपरेखा: श्रीलंका, मालदीव

इकाई १४ [illegible]

इकाई १५ श्रीलंका में अर्थव्यवस्था और समाज

इकाई १६ श्रीलंका की राजनीति में जातीयता का समावेशन

इकाई १७ मालदीव में अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति

खंड ७ दक्षिण एशिया में लोकतंत्र

इकाई १८ मानवाधिकार

इकाई १९ नागरिक समाज

इकाई २० दक्षिण एशिया में बहुवाद नियंत्राण के समक्ष चुनौतियाँ

खंड ८ भूमंडलीकृत होती दुनिया में दक्षिण एशिया

इकाई २१ उदारीकरण और संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम

इकाई २२ भूमंडलीकरण और राज्य

खंड ९ क्षेत्रीय संगठन

इकाई २३ गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास

इकाई २४ दक्षिण एशियाई क्षेत्राीय सहयोग संघ

खंड १० क्षेत्रीय सुरक्षा

इकाई २५ दक्षिण एशियाई सुरक्षा

इकाई २६ आणविक मुद्दे

इकाई २७ संघर्ष, समाधान और प्रबंधन